International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(5): 106-108

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(5): 106-108
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-07-2017
Accepted: 18-08-2017

डॉ0 रेनू सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, मिश्र बन्धु महाविद्यालय, बेलौही, लालपुर, महाराजगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ0 रेनू सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, मिश्र बन्धु महाविद्यालय, बेलौही, लालपुर, महाराजगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

गीता में कर्म विमर्श

डॉ0 रेनू सिंह

प्रस्तावना

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

श्रीमद्भगवतगीता के मतानुसार सांख्य योग अर्थात् ज्ञान योग है, सम्यक रूप से विचार करने के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि इसका मुख्य विषय कर्म योग है। मीमांसक ज्ञानकाण्ड की अपेक्षा कर्म को ही मोक्षदायक मानते हैं। अतः गीता कर्म करने का उपदेश देती है, कोई व्यक्ति यदि चाहे तो एक क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता –

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।

गीता में कहा गया है कि निष्काम कर्मयोग में कर्म के बीज का नाश नहीं होता और किसी प्रकार कर्मनियम का लोप होने से कोई दोष नहीं होता । इस निष्कामकर्मयोग का थोड़ा सा साधन भी जन्ममृत्यु के महान् संकट से रक्षा करता है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।[1]

इस निष्कामकर्मयोग के लिए व्यवसायात्मिका बुद्धि का होना अपरिहार्य है। यह बुद्धि ब्रह्मविषयक निश्चयात्मक धारणा है। यह बुद्धि साधक में एकरूप होती है और किसी प्रकार की भेदबुद्धि से मुक्त होती है। इसके विपरीत सांसारिक भोग–विषयों में लगे रहने वालों की बुद्धियाँ अनेक भेद वाली एवं अनन्त होती है। वेदों में जो कर्म बताये गये हैं वे तीन गुणों वाले कार्यरूप संसार के विषय में हैं। उनसे कर्मफल उत्पन्न होते हैं भोग एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति की कामना से ये क्रियाएँ की जाती हैं। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को राग, द्वेष आदि से मुक्त होकर निस्त्रैगुण्य होने का अर्थात् सभी प्रकार के कर्मफलों से और योग एवं क्षेम से दूर रहने का उपदेश देते हैं–

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थ्यो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।[2]

इस निष्कामकर्मयोग के विषय में श्रीकृष्ण का यही सूत्रवाक्य है कि पुरूष का केवल कर्म में ही अधिकार है, कर्मों में उसे कदापि स्पृहा नही रखनी चाहिए और साथ ही कर्म का पूर्णतः त्याग भी नहीं होना चाहिए।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
या कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

सभी कर्म फल की आसक्ति का त्याग कर तथा उनकी सिद्धि या असिद्धि को समान समझते हुए समत्व योग का अनुसरण करना चाहिए। इस समत्व बुद्धि को ही योग कहा गया है। इस समत्व बुद्धि से युक्त पुरूष कर्मों से उत्पन्न होने वाले पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है, यही कर्मों में

चतुराई है (योगः कर्मसु कौशलम्)। इससे ज्ञानी जन कर्मों से उत्पन्न फलों का परित्याग कर जन्म के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष या परमपद को प्राप्त कर लेते हैं–

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।[3]

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने उपदेश में उल्लेख किया है। इनमें ज्ञानयोग तो ज्ञानियों, संन्यास या सांख्ययोग ग्रहण करने वालों के लिए है और कर्मयोग निष्काम योगियों के लिए। इस निष्काम कर्मयोग को ही समत्वयोग, मदर्थकर्म भी कहा गया है। किन्तु जहाँ तक कर्मों का प्रश्न है, भगवान् श्रीकृष्ण का स्पष्ट आदेश है कि किसी भी मार्ग का पुरूष अनुसरण करे उसे कर्मों को त्यागने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मनुष्य के लिए कर्मों का त्याग सम्भव ही नहीं है। कर्मों को त्याग देने मात्र से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। कर्म करने के लिए मनुष्य बाध्य है। प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रजस् और तमस् गुण उसे निरन्तर कर्म करने के लिए विवश बनाए रहते हैं–

न ही कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

यदि कोई बल पूर्वक किसी प्रकार हठ से इन्द्रियों को तो नियन्त्रित कर ले, किन्तु मन से इन्द्रियों के भोग विषयों का चिन्तन करता रहे, तो वह मूढ बुद्धि वाला मिथ्याचारी कहा जाता है, वह पाषण्डी होता है। किन्तु जो मन से इन्द्रियों को वश में कर कर्मेन्द्रियों से शास्त्रविहित कर्मों को बिना किसी आसक्ति के करता है वह कर्मयोग का आचरण करता है और वह औरों से बढ़कर होता है। इस कारण निष्काम कर्म का उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि तुम अपने नियत अर्थात् धर्मानुकूल कर्मों को करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना निश्चय ही श्रेयस्कर है। कर्म न करने से मनुष्य के शरीर का निर्वाह भी सम्भव नहीं हो सकता, अतएव कर्म प्रत्येक दशा में करना चाहिए।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।[4]

यहीं भगवान् श्रीकृष्ण ने यह भी स्पष्ट किया है कि कैसे कर्मों से इस संसार का पुरुष कर्मों के बन्धन में पड़ता है। वस्तुतः, विष्णु को उद्दिष्ट यज्ञ, पूजन – अर्चन के कर्मों से भिन्न कर्मों के ही जो फल उत्पन्न होते हैं, वे मनुष्य को इस संसार के बन्धन में बाँधते हैं, इस कारण परमेश्वर के निमित्त ही बिना किसी आसक्ति के कर्म का आचरण करना चाहिए–

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।

कर्मों के आचरण के संन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि अज्ञानी और अहंकार से मूढ बना हुआ व्यक्ति ऐसा समझता है कि सभी कर्म मैं कर रहा हूँ, मैं ही कर्मों का कर्त्ता हूँ। वस्तुतः सभी कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किए जाते हैं। जो तत्व को जानता है वह यह सम्यक् समझता है कि गुणविभाग और कर्मविभाग आत्मा से पृथक् हैं।[5] पंच महाभूत मन, बुद्धि, अहंकार तथा इन्द्रियाँ और उनके विषय गुण विभाग हैं, और इनकी परस्पर चेष्टाएँ कर्म विभाग हैं। जो ज्ञानी इस भेद को समझता है वह जानता है कि मनुष्य कर्मों का कर्त्ता नहीं होता, वरन् गुण ही गुणों के प्रति व्यवहार करते हैं।

श्री गीता में भगवान ने अपनी प्राप्ति के लिए मुख्य दो मार्ग बतलाये हैं–

1– सम्पूर्ण पदार्थ मृग–तृष्णा के जल की भाँति अथवा स्वप्न की सृष्टि के सदृश मायामय होने से माया के कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणों में वर्तित है, ऐसे समझकर मन, इन्द्रियों और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन के अभिमान से रहित होना तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दधन परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव से नित्य रहते हुए एक सच्चिदानन्दधन वासुदेव के सिवाय अन्य किसी के भी होनेपन का भाव न रहना, यह तो सांख्य योग का साधन है।

2– सब कुछ भगवान का समझकर सिद्धि असिद्धि में समत्व भाव रखते हुए आसक्ति और फल की इच्छा त्याग कर भगवदासनुसार केवल भगवान के लिए सब कर्मों का आचरण करना तथा श्रद्धा–भक्ति पूर्वक मन वाणी और शरीर से सब प्रकार से भगवान के शरण होकर नाम गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरुप का निरन्तर चिन्तन करना यह कर्म योग का साधन है।

उक्त दोनों साधनों का परिणाम एक होने के कारण वे वास्तव में अभिन्न माने गए हैं परन्तु साधन कला में अधिकारी भेद से दोनों का भेद होने के कारण दोनों मार्ग भिन्न बतलाये गये हैं इसलिए एक पुरुष दोनों मार्गों द्वारा एक काल में नहीं सकता, जैसे श्री गंगा जी पर जाने के लिए दो मार्ग होते हुए भी एक मनुष्य दोनों मार्गों द्वारा एक काल में नहीं जा सकता। कर्म योग का साधन संन्यास–आश्रम में नहीं बन सकता, क्योंकि संन्यास आश्रम में कर्मों का स्वरूप से भी त्याग कहा गया है और सांख्य योग का साधन सभी आश्रमों में बन सकता है।

यदि कहे कि सांख्ययोग को भगवान ने संन्यास के नाम से कहा है, इसलिए उनका संन्यास आश्रम में ही अधिकार है गृहस्थ में नहीं, सांख्य योग में सांख्यनिष्ठ का उपदेश दिया गया है उसके अनुसार भी भगवान ने जगह–जगह अर्जुन को युद्ध करने की योग्यता दिखायी है। यदि गृहस्थ में सांख्य योग का अधिकार ही नहीं होता तो भगवान का इस प्रकार कहना कैसे बन सकता ? सांख्य मार्ग का अधिकारी देहाभिमान से रहित होना चाहिए जब तक शरीर में अहं भाव रहता है तब तक सांख्य योग का साधन भली प्रकार समझ में नहीं आता, इसी से भगवान ने सांख्य योग को कठिन बतलाया है तथा कर्मयोग साधन में सुगम होने के कारण अर्जुन के प्रति जगह–जगह कहा है कि तू निरन्तर मेरा चिन्तन करता हुआ कर्मयोग का आचरण कर तथा स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओं की प्राप्ति के उद्देश्य से एवं रोग संकटादि निवृत्ति के उद्देश्य से किये जाने वाले यज्ञ, दान, तप और उपासनादि सकाम कर्मों को अपने स्वार्थ के लिए न करना।

मान, बडाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त हुए हों, उनके बढ़ने की इच्छा को भगवान प्राप्ति में बाधक समझकर उसका त्याग करना।

अपने सुख के लिए किसी से भी धनादि पदार्थों की अथवा सेवा कराने की याचना करना एवं बिना याचना के दिए हुए पदार्थों को या की हुई सेवा को स्वीकार करना तथा किसी प्रकार भी किसी से अपना स्वार्थ सिद्ध करने की मन में इच्छा रखना इत्यादि जो स्वार्थ के लिए दूसरों से सेवा कराने के भाव हैं उन सबका त्याग करना।

ईश्वर की भक्ति देवताओं का पूजन माता–पिता आदि गुरुजनों की सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रम के अनुसार आजीविका द्वारा गृहस्थ का निर्वाह एवं शरीर सम्बन्धी खान–पान इत्यादि जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सबमें आलस्य का और सब प्रकार की कामना का त्याग करना अपने जीवन का परम कर्तव्य मानकर परमदयालु सबके सुहृद्, परम प्रेमी, अन्तर्यामी परमेश्वर के गुण प्रभाव और प्रेम की रहस्यमयी कथा का श्रवण, मनन और पठन–पाठन तथा रहित होकर उनके परम पुनीत नाम का उत्साहपूर्वक ध्यान सहित निरन्तर जप करना।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि लोकदृष्टि में उस ज्ञानी पुरुष के शरीर द्वारा प्रारब्ध से सम्पूर्ण कर्म होते हुए दिखायी देते हैं एवं उन कर्मों द्वारा संसार में बहुत ही लाभ पहुँचता है क्योंकि कामना, आसक्ति और कर्तृत्वाभिमान से रहित होने के कारण उस महात्मा के मन, वाणी और शरीर द्वारा किए हुए आचरण लोक में प्रमाणस्वरूप

समझे जाते हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेव को प्राप्त हुआ पुरुष तो इस त्रिगुणमयी माया से सर्वथा अतीत ही है। इसलिए वह न तो गुणों के कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और निद्रा आदि के प्राप्त होने पर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा ही करता है, क्योंकि सुख–दुःख, लाभ–हानि, मान–अपमान ओर निन्दा–स्तुति आदि में एवं मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण आदि में सर्वत्र आदि में उसका समभाव हो जाता है, इसलिए उस महात्मा को न तो किसी प्रिय वस्तु की प्राप्ति और अप्रिय की निवुत्ति में हर्ष होता है, न किसी अप्रिय की प्राप्ति और प्रिय के वियोग में शोक ही होता है। यदि उस धीर पुरुष का शरीर किसी कारण से शस्त्रों द्वारा काटा भी जाये या उसको कोई अन्य प्रकार का भारी दुःख आकर प्राप्त हो जाय तो भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेव में अनन्यभाव से स्थित हुआ पुरुष उस स्थिति में चलायमान नहीं होता, क्योंकि उसके अन्तःकरण में सम्पूर्ण संसार मृग तृष्णा के जल की भाँति प्रतीत होता है और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का भी होनापना नहीं भासता। विशेष क्या कहा जाय, वास्तव में उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्राप्त हुए पुरुष का भाव वह स्वयं ही जानता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा प्रकट करने के लिए किसी का भी सामर्थ्य नहीं है। अतएव जितना शीघ्र हो सके, अज्ञाननिद्रा से चेतकर उक्त सात श्रेणियों में कहे हुये त्याग द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सत्पुरुषों की शरण ग्रहण करके उनके कथानुसार साधन करने में तत्पर होना चाहिए, क्योंकि अति दुर्लभ मनुष्य का शरीर बहुत जन्मों के अन्त में परम दयालु भगवान् की कृपा से ही मिलता है। इसलिए नाशवान् क्षणभंगुर संसार के अन्त्यि भोगों को भोगने में अपने जीवन का अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिए।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गीता– शांकरभाष्य
2. गीता–रामानुजभाष्य
3. श्रीमद्भगवद् गीता
4. गीता–चिन्तन
5. गीता–माधुर्य